अध्याय -- ९

साठोत्तरी उपन्यास : शिल्प के विभिन्न आयाम

शिल्प का सम्बन्ध उपन्यास की कला या क्राफ्ट्स (Crafts) से है। एक ही प्रकार की सामग्री से विभिन्न प्रकार एवं डिजाइनों की चीजें बन सकती हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु को अनेक अलग-अलग रूप दिए जा सकते हैं। रूपाकार की यह प्रक्रिया शिल्प के अन्तर्गत आती है। वस्तु के प्रस्तुतीकरण का ढंग घटनाओं के के क्रम की निश्चितता, पात्रों एवं घटनाओं का चयन, आधिकारिक या मुख्य कथा के साथ अन्य प्रासंगिक या समान्तर कथाओं का समुचित नियोजन प्रभृति बातें उपन्यास के शिल्प से सम्बन्ध रखती हैं।

कथ्य और रीति में रीति का भी महत्व है। अच्छी-से-अच्छा वस्तु शिल्प के अभाव में दम तोड़ देता है, उसी प्रकार कई बार सामान्य-सी वस्तु शिल्प-क्षमता के बल पर निखर उठती है। माओ-त्से-तुंग का एक कथन यहां उल्लेखनीय है : "कोई भी ह्रासोन्मुखी चीज़ कमजोर शिल्प में आती है तो चिन्ता की बात नहीं है, किन्तु सशक्त शिल्प को लेकर आती है तो उस पर प्रहार करना चाहिए।"[१] माओ का यह विधान सशक्त शिल्प के प्रभाव को व्यंजित करता है। परन्तु एक बात यहां निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि नवीन शिल्प वस्तु या कथ्य को उद्घाटित करने की अनिवार्य शर्त के रूप में आना चाहिए। पाठक को यह अनुभूति हो कि यह वस्तु इस रूप से बेहतर किसी अन्य रूप में नहीं प्रस्तुत हो सकता है। प्रयोग के लिए प्रयोग या नवीनता के व्यामोह में लाया गया शिल्प रचना की प्रभावाभिव्यंजकता को कम कर देता है और साथ ही उसे कृत्रिम भी बना देता है।

आलोच्य उपन्यासों की शिल्प-विधि : पूर्ववर्ती विवेचन में शिल्प-विधि के विभिन्न रूपों को निर्दिष्ट किया जा चुका है, अत: यहां केवल आलोच्य उपन्यासों की शिल्प-विधि का ही अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है। अध्ययनगत सुविधा के विचार से

---

१. 'नदी के द्वीप' का रचना संसार' नामक व्याख्यान से : व्याख्याता : डा० शिवकुमार मिश्र।

उसका अनुशीलन निम्नलिखित शीर्षकों की सहायता से किया जा रहा है : (१) वर्णनात्मक या ऐतिहासिक शैली, (२) आत्मकथात्मक शैली, (३) पत्रात्मक शैली, (४) डायरी शैली, (५) चेतन प्रवाह शैली, (६) प्रतीकात्मक रूपायन, (७) कहानियों की पंचतन्त्रात्मक शैली, (८) अन्य विधियां।

(१) वर्णनात्मक या ऐतिहासिक शैली : उपन्यासों की यह प्राचीन -तम और बहुप्रचलित शैली है, परन्तु अब उसमें भी अब स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता का आग्रह बढ़ रहा है। पूर्वस्मृति, अन्तर्विवाद, शब्दसहस्मृति, स्वप्न-विश्लेषण आदि शिल्प के नये आयामों का प्रयोग इस शैली में भी बढ़ने लगा है। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'अलग-अलग वैतरणी', 'राग दरबारी', 'सीमाएं टूटती हैं', 'धरती धन न अपना', 'तमस', 'कड़ियां', 'सफेद मेमने', 'अनदेखे अनजान पुल', 'आपका बण्टी', 'बारह घण्टे', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'यह पथ बन्धु था', 'उग्रतारा', 'सांप और सीढ़ी', 'जुलूस', 'लाल टीन की छत', 'दूसरी तरफ', 'ये गलियां ये रास्ते' 'मेरा मन बनवास दिया-सा', 'सूरजमुखी अन्धेरे के', 'मत्रो मरजानी', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका ?' 'आगामी अतीत', 'दिल एक सादा कागज़', 'छाया मत छूना मन', 'अन्तराल', 'मुरदा घर', 'रेखा', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं', 'मन-वृन्दावन', 'प्रेम अपवित्र नदी', 'नदी फिर बह चली', 'एक टूटा आदमी', 'एक पंखड़ी की तेज़ धार', 'एक कहानी अन्तहीन', 'शहीद और शोहदे', 'पुनर्नवा', 'कृष्णकली', 'कांच घर', 'अनसुलझी गांठें', 'टेराकोटा', 'कथा-सूर्य की नयी यात्रा' प्रभृति उपन्यास इस शैली में लिखे गये हैं।

'राग दरबारी' हिन्दी का प्रथम सम्पूर्णतः व्यंग्यात्मक उपन्यास है, अतः उसके शिल्प एवं भाषिक रचाव में व्यंग्य का स्वर सर्वाधिक रूप में उभरकर आया है। इस व्यंग्यात्मकता के कारण कथ्य के प्रभाव में वृद्धि होने के साथ-साथ रोचकता के गुण का समावेश भी दिखायी पड़ता है। 'दिल एक सादा कागज़' का 'टोन' भी व्यंग्यात्मक है किन्तु उसमें नाटकीयता, फैण्टसी और 'एब्सर्डिटी' का प्रयोग भी कहीं कहीं हुआ है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' का शिल्प ~~नाटकी~~ नाटकीय उपन्यासों का-सा है। 'टेराकोटा' में नाटकीय विधान एवं फैण्टसी का मिला-जुला रूप मिलता है। 'सीमाएं टूटती हैं' में तो नाटकों की भांति प्रारम्भ में पात्र-परिचय भी दिया गया है। 'जुलूस' और 'मन-वृन्दावन' में

फोटोग्राफिक शैली के कारण चलचित्रों की-सी गति आ गयी है। `एक पंखुड़ी की तेज धार` रिपोर्ताज शैली का उपन्यास है। `एक कहानी अन्तहीन` में बंगला उपन्यासकार संतोषकुमार कृत `किनु गोवालेर गली` के शिल्प को अंगीकृत करने की चेष्टा हुई है किन्तु उपन्यासकार उसका सम्पूर्णत: निर्वाह नहीं कर पाया है। एक गली के विविध मकानों की वह कहानी है। मकान नं- ८ २३ के मास्टर शिव गोपाल की मृत्यु हो जाती है। उनके अन्तिम संस्कार के लिए जुटे हुए लोगों के पास उनके जीवन से सम्बन्धित कई टुकड़े हैं। इन टुकड़ों से मास्टर साहब के चरित्र का पट तैयार होता जाता है। इसी प्रकार अन्य मकानों की भी अपनी अपनी कहानियां हैं जो छोटे-छोटे `लाइफ-स्केचिज` के समान हैं, किन्तु मकान नंबर ७ ८ १०० के दीप नारायण की कहानी ने कुछ अधिक विस्तार ले लिया है जिससे उसके उक्त प्रकार के शिल्प का सम्पूर्ण निर्वाह नहीं हो सका है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इस वर्णनात्मक विधि में भी नवीन टैक्नीकों का प्रयोग अब निरन्तर बढ़ रहा है। इन प्रयोगों ने उपन्यास-कला को अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्रदान की हैं किन्तु साथ ही जहां प्रयोग का आग्रह मात्र रहा है अथवा वह प्रयोग किसी कृति की छाया बनकर आया है वहां शिल्प का निखार अत्यन्त साधारण कोटि का अथवा कहीं कहीं थोपा हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है।

<u>(२) आत्मकथात्मक शैली :</u> व्यक्ति-चरित्र की सूक्ष्म-प्रतिक्रियाओं तथा बारीकियों के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। यहां डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह मत ध्यातव्य है कि "स्वतन्त्रता-पूर्व लिखे गये आत्मकथात्मक शैली के उपन्यासों की तुलना में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के काल में इस शैली में लिखे गए उपन्यासों में विशिष्ट अन्तर यह है कि जहां पहले कथा कहनेवाला पात्र दूसरे के चरित्रों पर ही प्रकाश डालता था, उसका स्वयं का चरित्र बहुत स्पष्ट नहीं हो पाता था, यहां तक कि `लज्जा` तथा `त्यागपत्र` में भी यह बात स्पष्टतया देखी जा सकती है। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के काल में लेखकों ने ऐसी सूक्ष्म प्रतिक्रियाएं प्रस्तुत कीं, ऐसे स्वाभाविक संकेत एवं प्रतीक उपस्थित किए, जिससे इन पात्रों का पूर्ण व्यक्तित्व प्रकाश में आता है और उनके अन्त: तथा बाह्य का संघर्ष अपनी पूरी यथार्थता के साथ उद्घाटित होता है। यही नहीं, स्वयं कथा कहनेवाला पात्र भी अपनी अच्छाइयों-बुराइयों का मार्मिक विश्लेषण करता चलता है, जिससे कि उसका भी व्यक्तित्व

समग्र रूप में सामने आता है । 'त्यागपत्र' में जस्टीस पी० दयाल का चरित्र एकांगी है, जबकि 'सुबह अन्धेरे पथ पर' के राजू तथा 'न आनेवाला कल' के नरूला के बारे में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो रहस्यमय हो और जो उनके व्यक्तित्व को पूर्ण प्रकाशित न करे ।[1] परन्तु आलोच्य काल में भी कतिपय अच्छे आत्मकथात्मक उपन्यास आये हैं जिनमें कथा कहनेवाला पात्र गौण रूप में रहा है, यथा 'आधा गांव', 'काला जल', 'डाक बंगला', 'अन्धेरे बन्द कमरे' आदि । डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अन्तिम उपन्यास को वर्णनात्मक शैली का उपन्यास कहा है,[2] किन्तु वस्तुत: वह आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास ही है । इस शैली के अन्य उपन्यासों में निम्नलिखित मुख्य हैं : 'यात्राएं', 'अठारह सूरज के पौधे', 'कैसा खिड़कियोंवाली इमारत', 'प्रश्न और मरीचिका', 'महानगर की मीता', 'चारु-चन्द्रलेखे', 'भीतर का घाव', 'तीसरा आदमी', 'प्रेत' 'वे दिन', 'मुक्तिबोध', 'दराज़ों में बन्द दस्तावेज़', 'एक कटी हुई ज़िन्दगी : एक कटा हुआ कागज़', 'लौटती लहरों की बांसुरी', 'अमृत और विष', 'एक और अजनबी' आदि । इस कोटि के उपन्यासों में 'आधा गांव', 'वे दिन', 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'अमृत और विष' आदि को हमारे आलोच्यकाल की महत्वपूर्ण उपलब्धियां माना जा सकता है ।

<u>(३) पत्रात्मक शैली :</u> 'चन्द हसीनों के खतूत' जैसी सम्पूर्णत: पत्रात्मक शैली के प्रयोग की कोई महत्वपूर्ण रचना इस युग में उपलब्ध नहीं होती । जो उल्लेखनीय रचनाएं प्रकाश में आयी हैं उनमें इस शैली का आंशिक प्रयोग हुआ है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' में हरबंस की योरोप यात्रा तथा उस समय के उसके आन्तरिक मनोभावों का सम्पूर्ण ब्यौरा उसके पत्रों द्वारा दिया गया है ।[3] उपन्यास के आत्मकथात्मक स्वरूप को व्याघात न पहुंचे इस दृष्टि से यह युक्ति आजमायी गयी है कि उपन्यास की नायिका नीलिमा यह सारे पत्र मधुसूदन को पढ़ने के लिए देती है । 'आगामी अतीत' में भी तीन पत्र आते हैं जिनमें से दो पत्र कथा-विकास की सूचना तथा नायक की मनोदशा का परिचय देते हैं (पृ० ६७ और ७३) और एक पत्र नायक ने ही अपने नाम लिखा है । व्यक्ति किस प्रकार अपने कार्यों को जस्टिफाय करने का यत्न करता है, उसका उदाहरण निम्न लिखित पत्र है । इस में नायक का अन्तर्द्वन्द्व भी भली-भाँति संकेतित हुआ है :

---

१. हिन्दी उपन्यास ~~सुवी-कुशल-बोस-1-~~ : उपलब्धियाँ : पृ० २२ ।

२. वही : पृ० २१ । ३. देखिए : 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० ११२ से १३१ ।

भाँति संकेतित हुआ है :

` सुनो कमल बोस ।

लोअर बाजार में घुसने की तुम्हारी हिम्मत क्यों नहीं पड़ी ? एक क्षण के लिए तुम्हें लगा कि जैसे सब लोग तुम्हें पहचान रहे हैं और उंगली उठा-कर कह रहे हैं कि यही है वह जो पच्चीस बरस पहले चन्दा से वादा करके गया था और फिर लौट कर नहीं आया था । इतनी-सी ही बात तो थी । पर इसमें इतनी बड़ी गलती क्या है ? बहुत-से वचन ऐसे होते हैं, जो आदमी पूरे नहीं कर ~~सकता~~ पाता । क्या दुनिया में हर आदमी ने दिया हुआ वचन पूरा किया है ? कोई है ऐसा, जो कर पाया है ? तुमने कोई बेईमानी या दगा नहीं की । तुमने चन्दा के साथ कुछ भी ऐसा नहीं किया था, जो नैतिकता के लिहाज़ से ग़लत या गन्दा रहा हो । तुमने उसे चाहा था... उसे प्यार किया था । इसके अलावा तो कुछ नहीं । उसके शरीर को तुमने अपनी आकांक्षाओं के लिए इस्तेमाल नहीं किया था । उसे कभी मैला नहीं किया था... फिर यह पश्चाताप कैसा ? तुम जाओ और उससे मिलकर आओ.. इसमें घबड़ाने या पछताने की क्या बात है ? हिम्मत से काम लो...

तुम्हारा,
कमल बोस ।`[१]

उक्त पत्र से कमल बोस की अन्तश्चेतना में पड़े हुए अपराध-बोध को लेखक ने कुशलता से अंकित कर दिया है ।

`सीमाएं टूटती हैं` में पत्र और पत्र पढ़ते समय के पात्र के मनो-भावों को ब्रेकेट में देकर श्रीलाल शुक्ल ने द्विअर्थी काम लिया है ।[२] इससे दोनों पात्रों का आन्तरिक व्यक्तित्व पाठक के सम्मुख स्पष्ट हुआ है । उसी प्रकार पृ० १३२ से शुरू होनेवाला तारानाथ का पत्र भी उसके चरित्र को उजागर करता है । `आधा गांव` में पृ० ३३२ पर दिये गये पत्रांश के अभाव में हकीम साहब के चरित्र तथा उपन्यास की दमतोड़ वेदना को नहीं समझ सकते । अश्क के `शहर में घूमता आईना` में तो अनेक टैक्नीकों को अपनाया गया है । उसमें भी आवश्यकतानुसार पत्रों का प्रयोग किया गया है ।

---

१. `आगामी अतीत` : पृ० ३४ ।
२. `सीमाएं टूटती हैं` : पृ० ६६-६८ ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यासों में पत्र-शैली के आंशिक प्रयोग हुए हैं। वर्गीकरण के दृष्टिकोण से देखा जाय तो पत्रात्मक शैली की कोटि में रखी जानेवाली कोई महत्वपूर्ण कृति हमें प्राप्त नहीं होती। वैसे घटनाओं का उच्छल प्रवाह इस शैली में बाधित होता है किन्तु इसके प्रयो द्वारा मानसिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि लेखकों ने आवश्यकतानुसार इसका उपयोग करके अपनी शिल्पगत सजगता का साक्ष्य उपस्थित किया है।

(४) डायरी शैली : 'अपने अपने अजनबी', 'एक और अजनबी', (सुरेश सिनहा) तथा 'नव बरस' (नरेन्द्रनाथ) आदि उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग किया गया है। 'नव बरस' सम्पूर्णतया डायरी शैली में ही लिखा गया है। शेष दो उपन्यासों में उसका आंशिक प्रयोग हुआ है। यहां डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह मत ध्यातव्य है कि "इस शैली के उपन्यासों में सतर्कता की बड़ी आवश्यकता होती है। पात्रों की डायरियां नित्य-प्रति के जीवन में लिखी जाने वाली डायरियों के समान ही सहज एवं स्वाभाविक होनी चाहिए।[१] इस दृष्टि से 'अपने अपने अजनबी' और 'एक और अजनबी' की डायरियां अधिक सफल हैं।

(५) चेतन प्रवाह शैली : जेम्स जायस के 'यूलीसेस' या 'ए पोर्टेट आफ द आर्टिस्ट एज ए यंग मैन' की भांति इस शैली में सर्वांग शुद्ध उपन्यास इस काल में नहीं मिलता, परन्तु इसका आंशिक प्रयोग उपन्यासों में यत्र-तत्र हुआ है। मानव-मन की अतल गहराइयों में पहुंचकर उसके सही रूप को पकड़ने की चेष्टा इसमें होती है। 'एक और अजनबी', 'सीमाएं टूटती हैं', 'इमरतिया', 'यात्राएं', 'अन्तराल', 'टेराकोटा' आदि उपन्यासों में इसका आंशिक प्रयोग हुआ है। 'इमरतिया' में 'जमनिया मठ' के पतन के बाद भगौती (भगवतीप्रसाद) की मानसिक स्थिति को इसी शैली से उभारा गया है :

"मुंदी हुई पलकों के अन्दर, लगता है, खयालों के हुजूम थिरकने लगे हैं... लो पुलिसवाले आ धमके। भगौती को उन्होंने गिरफ्तार कर लिया है... हाथों में हथकड़ियां डालकर पुलिसवाले उन्हें हवालात की तरफ ले जा रहे हैं।... चौक होकर क्यों ले जा रहे हैं ? चौक में। रस्तोगी ब्रदर्सवाली दूकान

१. 'हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ : पृ.२२।

के सामने पुलिसवालों की रफ्तार धीमी हो गई है... दोनों सेठ भगौती पर थूकते हैं। छोटा फबती कसता है, `साला हरामी, पाकिस्तानी एजन्ट का दलाल। मुंशी का बच्चा, वतन-फरोश कहींका। हवालात के अन्दर मस्तराम पहले से मुस्कराता है, फिर दांत पिस- पीसकर कहता है, `आ गए बच्चू ?`... बाबा ठहाके लगाता है... फिर अंगूठा दिखलाता है। बोलता कुछ नहीं है। इमरतिया मर गई है... गेरुआ कपड़ों से लाश ढकी है... मस्तराम अकेले ही अवधूतिन की लाश को अपने कन्धों पर लादे मसान की तरफ जा रहा है। मठ के खेतों में तैयार फसल की लूट मची है ... भगौती के बेलों को खोलकर लोगों ने भगा दिया है... मठ के दोनों घोड़े गायब हो गए हैं... बिजली का इंजन ठप्प है, पानी नहीं निकल रहा है कुंए से, समूचा बाग सूख रहा है... जमनिया मठ के प्रवेश-द्वार पर दूर से ही चमक रहा है ` चन्द्रशेखर आज़ाद सैनिक शिक्षण शिविर `। नज़दीक से देखने पर छोटे अक्षरों में दीख रहा है -- मुख्य अधिष्ठाता : स्वामी अभयानन्द `। ... दोनों कलाइयों में दस-दस घड़ियां हैं... गले में घड़ियों की लम्बी माला लटक रही है। इर्द-गिर्द ट्रान्ज़िस्टरों का अम्बार लगा है... सामने छोटी-छोटी क्यारियों में खूंटियों की तरह फाउन्टन पेनें जगमगा रही हैं।`[1]

उक्त उदाहरण से न केवल भगौती, अपितु बाबा, मस्तराम आदि के चरित्र तथा मठ की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। मठ की भ्रष्ट प्रवृत्तियों के स्थान पर नवीन प्रगतिशील प्रवृत्तियों का संकेत भी लेखक ने बड़ी कुशलतापूर्वक दे दिया है। ऐसे ही मोहन राकेश के उपन्यास `अन्तराल` का कुमार जब श्यामा को अपनी बाहों में लेकर भोगना चाहता है, तब एक क्षण के लिए श्यामा के अन्तर्चक्षु के सामने कई बातें परावर्तित होकर उपस्थित हो जाती हैं जिन्हें लेखक ने चेतन-प्रवाह शैली के माध्यम से संप्रेषित किया है। इस शैली में विचार कभी सिलसिलेवार नहीं आते क्योंकि इसके द्वारा प्राय: अचेतन मन की उलझी हुई गुत्थियों को पकड़ने का प्रयास होता है जो असंबद्ध होती हैं। उपरिनिर्दिष्ट उदाहरण में लेखक के प्रयत्न के बावजूद कहीं कहीं सम्बद्धता आ ही गयी है जो मोहन राकेश के इस प्रकार के उदाहरण से तुलना करने पर स्पष्ट हो जायेगी :

`अन्धेरा। अंधेरा घूम रहा है।.. गाड़ी में शरीर से सटी भीड़ और सटती जा रही है।` कोई बात नहीं। ऐसा भी हो जाता है कभी।` देव के चेहरे पर कोई शिकन नहीं है। सीमा गाल पर हाथ रखे चिल्ला रही है,

---

1. `इमरतिया` : पृ० १०७-१०८।

`यू... यू... यू..।` मिसेज सोहनसिंह बात किए जा रही हैं, आ से शामो` .. बेबी बीजी की गोद में सो गई है... टेलिफोन पर कुमार का नम्बर नहीं मिल रहा। देव की मरने के समय की टकटकी जिसके सामने कुछ भी नहीं है। कु कुमार की बस के आने का समय हो चुका है। सीमा आईने के सामने खड़ी ब्लाउज़ की हुकें खोल रही है। खाल में धंसी-सी उसकी रीढ़ के नीचे छोटे-छोटे रोएं हैं। टब के गुनगुने पानी में बुलबुले उठ आए हैं। अन्धेरे में आईने के अन्दर से एक नंगा शरीर उसे ताक रहा है। `मम्मी दो-चार दिन कुढ़ लेंगी, फिर अपने-आप ठीक हो जाएगी। एक लम्बी शाम और अकेला बरामदा। केतली में पानी खौल गया है, पर दूधदानी में दूध नहीं है। `कौन है वह जिसे दशहरा देखने के लिए बुलाया था ?` देव ने कपड़े उतार दिए हैं और चुपचाप उसके शरीर को बाहों में जकड़ लिया है। वह तौलिए में मुंह लपेटे खिड़की के पास खड़ी है। रमेश्वरी की हंसी रुकने में नहीं आती। `कहती थी आजकल एक नया तजुरबा कर रही हूं। सीमा उसके ऊपर झुक आयी है। उसकी सांसों में वैसी ही गन्ध है जैसी... देव दोस्तों के साथ कहीं चला गया है और उसके लौटने का कुछ पता नहीं है। `तुम अभी नई आई हो इसलिए... वाल क्लाक में वक्त बीतता जाता है। रात के दो, तीन, चार बीजी दरवाजे के पास खड़ी हैं। रजिस्टर का पन्ना सामने खुला है। उस पर अभी हस्ताक्षर होनेवाले हैं। `फ्रैंकली स्पीकिंग, मैं तुम्हारे सिचुएशन को भी अच्छी तरह समझ सकती हूं। यू आर स्टील यंग एण्ड...।`[1]

उक्त उदाहरण में आयी हुई घटनाएं, वाक्य या वाक्यांश अलग-अलग स्थान और काल से सम्बद्ध हैं। यह चेतन-प्रवाह शैली में आये हुए विचार, दृश्य या संवाद ऊपरी तौर से असम्बद्ध होते हुए भी व्यक्ति की समग्रता को लक्षित करते हुए आन्तरिक दृष्टि से देखने पर सम्बद्ध लगते हैं। ऊपर के दोनों उदाहरणों से यह लक्षित होता है समग्र उपन्यास को पढ़ लेने पर तथा उन-उन पात्रों की मानसिकता को समझ लेने पर यह सारी बातें असम्बद्ध नहीं प्रतीत होती आन्तरिक संघर्ष या तन्द्रावस्था में ऐसे विचारों का आना प्राकृतिक अथच स्वाभाविक भी है।

---

१. `अन्तराल` : पृ० २०८-२०९।

(६) प्रतीकात्मकता : 'जल टूटता हुआ', 'अलग अलग वैतरणी', 'राग दरबारी', 'आधा गाँव' आदि उपन्यासों के शीर्षक प्रतीकात्मक हैं। सामान्यत: प्रत्येक उपन्यास किसी न किसी जीवन-चेतना को रूपायित करता है। लेखक कई बार इसके लिए प्रतीकात्मक शीर्षक भी देते हैं किन्तु प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग केवल शीर्षकों तक ही सीमित नहीं रहता। वस्तु को प्रतीकात्मक स्वरूप प्रदान करने से उपन्यास के शिल्प में कुछ अंतर दृष्टिगोचर होता है। 'मछली मरी हुई', 'सूखता हुआ तालाब', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' तथा 'एक चूहे की मौत' प्रभृति उपन्यासों में वस्तु को प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित करने का प्रयास हुआ है, परन्तु उसका संपूर्ण निर्वाह तो केवल 'एक चूहे की मौत' में ही हो पाया है। अत: कुछ आलोचकों ने उसे हिंदी का एक मात्र और प्रथम प्रतीकात्मक उपन्यास माना है।[१] 'मछली मरी हुई' में 'मरी हुई मछलियाँ' लिस्बियन स्त्रियों का प्रतीक हैं, जिसका ब्योरेवार वर्णन उपन्यास में हुआ है। 'सूखता हुआ तालाब' में गांव का रामी तालाब सम्पूर्ण गांव के प्रतीक रूप में आकर गांव में परिवर्तित सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक वातावरण को रूपायित करता है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में 'खोया हुआ आदमी' आधुनिक मध्यवर्गीय मनुष्य है और समुद्र 'जन-समुद्र' के लिए आया है। 'एक चूहे की मौत' में चूहा 'फाईल' का प्रतीक है। इस उपन्यास में आफिस के उबाऊ वातावरण को व्यंग्यात्मक ढंग से उकेरा गया है। चूहेमार, बड़ा चूहेमार', चूहाखाना प्रभृति शब्द उसमें क्रमश: क्लर्क, आफिसर एवं आफिस के लिए आये हैं।

इस प्रकार यह लक्ष्य किया जा सकता है कि आजके जीवन की विसंगतियां एवं विद्रूपताएं और इनके बीच सामान्य व्यक्ति की विवशता का जीता-जागता चित्र तथा उसका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करने में यह विधि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

(७) कहानियों की पंचतन्त्रात्मक शैली : आलोच्य काल में धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' की टाईप का[२] पंचतन्त्रात्मक शैली का उपन्यास तो नहीं उपलब्ध होता, किन्तु शैलेश मटियानी कृत 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' कुछ हद तक इस शैली के अन्तर्गत आ सकता है। कल्लन उस्ताद उर्फ 'वस्ताद'

---

१. डा० हेमचन्द्र जैन : प्रकर -मई-जून, १९७२ : पृ० ५३। २. प्रस्तुत उपन्यास १९६० के पूर्व की रचना है जिस पर अध्याय-४ में विचार कर चुके हैं।

अपने शागिर्द पोपट को `तिरिया` के चार नहीं बल्कि दो भेद बताते हुए नर्मदाबेन नामक सेठानी एवं गंगूबाई नामक एक केले बेचनेवाली की कहानी को इस प्रकार उभारते हैं कि तथाकथित भद्र समाज की भद्रता चिंदी-चिंदी उड़ जाती है। उपन्यास का प्रारम्भ ही इस प्रकार होता है :

'न सात समन्दर-पार का, न राजा इन्दर के दरबार का, और न शहजादे शहरियार या साढ़े तीन यार का -- यह किस्सा है, गांठिया-पापड़ी, ऊसल-पाव, मसाला डोसा, बटाटा बड़ा, चालू-स्पेशल चा और भेल-पुरी के देश बम्बई का।... और वस्ताद किस्सा यों शुरू करता है -- `सुन कलन्दर।... देसाई भुवन, सातवां माला, कालबा देवी, मुम्बई नं-२ के शानदार फ्लैट में रहनेवाली सेठानी नर्मदाबेन और गांव पिलखोली, पो-डाकपोस्ट-तालुका रेंसी, जिल्हा सतारा, हाल मुकाम मकनजी बमनजी की चाल, खोली नं- पंधरा, भुलेश्वर मुम्बई नं-२ की गंगूबाई का यह किस्सा है।'[१]

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रयोग के नाम पर इस शैली का अंशत: प्रयोग उपन्यासों में किया गया है, किन्तु ऐसी कृतियों की संख्या अल्प ही है।

(८) अन्य विधियां : उपर्युक्त सात प्रकार की शिल्प-विधियों के अतिरिक्त अन्य कई विधियों का प्रयोग हुआ है। अमृतलाल नागर कृत `अमृत और विष` में कहानी-दर-कहानी की टैक-नीक को अपनाया गया है। उपन्यास के नायक अरविन्दशंकर एक उपन्यासकार हैं। अत: उनकी कथा के साथ-साथ समान्तर वह कथा भी चल रही है जिसे वे औप-न्यासिक रूप प्रदान करने जा रहे हैं। सहलेखन की टैकनीक अज्ञेय के प्रयत्नों से `बारह खम्भे` से शुरू होती है। आलोच्य काल में ऐसा एक उपन्यास मिलता है -- `दो इन्च मुस्कान` जिसको एक लेखक दम्पति ने (राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी) ने लिखा है।

शिल्प के इतर आयाम : ऊपर कथा-शिल्प की विविध युक्तियों का विवेचन हमने किया। अब शिल्प के अन्य आयामों की चर्चा यहां प्रासंगिक ही होगी।

(१) अधोमुखी मुखी कथा-प्रवाह : इस काल में उपन्यास की कथा का प्रवाह प्राय: आगे से

---

१. `किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई` : पृ०- आमुख से।

पीछे की ओर रहा है। डा० रणवीर रांग्रा के मतानुसार "उपन्यास के कथानक की कलावधि का संकोच इस युग के शिल्प-विकास की एक और उपलब्धि है जिसमें जीवन के किसी अत्यल्प काल अर्थात् घण्टा, दिन, सप्ताह, आदि में ही पूरा जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है। परिणामत: उपन्यास की कहानी पीछे से आगे नहीं, आगे से पीछे की ओर चलने लगती है।"[1]

शानी का उपन्यास 'काला जल' कुछेक घण्टों में तीन पीढ़ियों की कथा कह जाता है। उपन्यास का एक पात्र बब्बन अपनी छोटी फूफी के यहां शबेबरात की फातिहा पढ़ने जाता है। फेहरिस्त के अनुसार वह छोटी फूफी के खानदान के मृत व्यक्तियों की फातिहा पढ़ता जाता है और स्मृतियों के रूप में उन-उन पात्रों की कथा से उपन्यास का पट बुनता चला जाता है। ३६७ पृष्ठीय इस उपन्यास के अन्त में हम बब्बन को फूफी के यहां से फातिहा की समाप्ति पर थककर जाते हुए देखते हैं: "मुझे फूफी के यहां की फातिहा ने बेतरह थका दिया था। चाहता था कि बाहर निकलते ही खूब खुलकर सांस लूं, लेकिन सारे वातावरण में सिवार-चीले और काले जल की बिसायंध फैली हुई थी।"[2]

कमलेश्वर के उपन्यास 'डाक बंगला' का प्रारम्भ तिलक के स्मृति-पटल से उभरती हुई रेखाओं के रूप में होता है। उपन्यास की नायिका इरा से तिलक की भेंट काश्मिर-यात्रा के दौरान हुई थी। १२३ पृष्ठों के इस उपन्यास में ११० पृष्ठों तक इरा की कहानी और काश्मिर-यात्रा के प्रसंग समानान्तर चलते हैं। यहां तक इरा कहानी के नैरेटर के रूप में रहती है। बाद के कथा-सूत्र तिलक को इधर-उधर से प्राप्त होते हैं।

'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने एक दूसरी टैक्नीक को अंगीकृत किया है। मानसी कैमिकल्स के मालिक मिस्टर कमल बोस पचीस वर्षों के बाद कलकत्ता से दार्जिलिंग आकर अपनी प्रियतमा चन्दा की खोज चलाते हैं। स्मृतियां पूर्वदीप्ति प्रभृति के सहारे जहां उनके अतीत की एक-एक पर्त खुलती है वहां चन्दा की शोध-यात्रा -- दार्जिलिंग से नीली घाटी, धौलपुर, सिलीगुड़ी और कार्सियांग --- के दौरान उसके पिछले पचीस वर्षों की कहानी भी शनै: शनै: सामने आती जाती है। ७५ पृष्ठों तक की कथा इन दो तानों-बानों से बुनती चली गई है, शेष ३७ पृष्ठों में कथा सीधी गति में -- पीछे से आगे की ओर बढ़ती है।

---

१. 'हिन्दी उपन्यास': सं० डा० सुषमा प्रियदर्शिनी: पृ० १९५। २. 'काला जल': पृ. ३६७।

'तीसरा आदमी' (कमलेश्वर) की सम्पूर्ण कथा अधोगामी है। उपन्यास का नायक नरेश उसमें 'नैरेटर' के रूप में आता है और स्मृतियां, पूर्वदीप्ति आदि के सहारे कथा के सूत्र परस्पर गूंथते गये हैं। 'मोहन राकेश के 'अन्तराल' में समय तो ~~व~~ कुछेक दिनों का ही है किन्तु उन कुछ दिनों के संवेदनों और संवेगों को अतीत के कई वर्षों से संपृक्त किया गया है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' के प्रथम भाग की कथा भी इसी प्रकार आगे से पीछे की ओर चलती है। उपन्यास का नैरेटर पत्रकार मधुसूदन नौ साल बाद बम्बई से दिल्ली आया है। अपने पुराने मित्र हरबंस और नीलिमा के मिलने पर उनके साथ बिताए हुए जीवन के कुछ क्षण उसकी स्मृति में कौंध जाते हैं।

इनके अतिरिक्त 'कांचघर', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'इमरतिया', 'उग्रतारा', 'नदी फिर बह चली', 'दिल एक सादा कागज़', 'अठारह सूरज के पौधे', 'भीतर का घाव', 'मेरा मन वनवास दिया-सा' प्रभृति उपन्यासों में यही अधोमुखी कथा-प्रवाह कहीं सम्पूर्ण तो कहीं आंशिक रूप में उपलब्ध होता है।

(२) <u>पूर्वदीप्ति (Flash-back) :</u> ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक उपन्यासों में अधोमुखी कथा-प्रवाह की प्रणाली अधिकांशत: उपलब्ध होती है। तदर्थ जिन टैक्नीकों को कार्यान्वित किया जाता है उनमें पूर्वदीप्ति (Flash-back) सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय है। किसी पात्र विशेष को विशिष्ट घटना-चक्र में उपस्थित कर अतीत की स्मृतियों को ताजा करने के लिए सिनेमा में फ्लैश बैक की टैक्नीक अपनायी जाती है। इससे एक ही घटना पर पात्र के दोहरे मनोभावों को सरलता से अंकित किया जाता है। सिनेमा में यह टैक्नीक इतनी लोकप्रिय हो गई है कि प्राय: प्रत्येक चित्र में उसका प्रयोग होता है। फ्लैश बैक की सिनेमाई सफलता ने उपन्यासकारों को भी इस दिशा में प्रेरित किया है और आजकल के उपन्यासों में सर्वसाधारणत: इसे प्रयोग में लाया जा रहा है।

उपन्यासों में इस टैक्नीक को प्राय: तीन प्रकार से अंगीकृत किया गया है। एक तो समग्रतया, जहां कथा के प्रारम्भ में इसे प्रयुक्त कर अन्त तक में मूल कथा के विकास के पश्चात् उसे प्रारम्भिक घटना से सम्बन्धित करके समाप्त किया जाता है। दूसरे में आवश्यकतानुसार प्रभाव-~~निर्मिति~~ निर्मिति के लिए यत्र-तत्र इसका प्रयोग किया जाता है। तीसरी विधि यह है जिसमें सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु

उपन्यास की कथा के एक बृहद् अंश के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। पहली विधि के अनुसार उपन्यास के प्रारम्भ में किसी पात्र की स्मृतियाँ विशिष्ट परिस्थिति से उद्दिप्त होकर जागृत हो उठती हैं और वह कुछ समय के लिए अतीत-सागर में डूबने-उतराने लगता है। 'काला जल', 'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी' आदि उपन्यास इस कोटि में आते हैं। 'काला जल' में शबेबरात की फातिहा के के द्वारा अतीत के कुछ मृत व्यक्तियों को फ्लैश बैक विधि से झांकने का प्रयास हुआ है। 'डाक बंगला' और 'तीसरा आदमी' में स्मृतियों के सहारे अतीतोद्घाटन का कार्य हुआ है। यहां हम डा० धनराज मानधाने के इस मत से सहमत हैं कि "सम्पूर्ण उपन्यास इस शैली में लिखना अस्वाभाविक-सा लगता है। कारण कितना ही कोई विद्वान् हो अतीत का ज्यों का त्यों चित्र वह अपनी आंखों के सामने खड़ा नहीं कर सकता। और जिन्होंने प्रयत्न किये हैं उसे देखकर लगता है कि प्रारम्भ और अन्त में इस शैली को लाकर दोनों के बीच अन्य शैलियों के सहारे ही उन्होंने अपना काम चलाया है।"[1]

इस शैली की दूसरी कोटि में 'बारह घण्टे', 'शहर में घूमता आईना', 'एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज़', 'वे दिन', 'मछली मरी हुई' 'उग्रतारा', 'अलग अलग वैतरणी', 'जल टूटता हुआ', 'टेराकोटा', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका ?' प्रभृति उपन्यास आते हैं। स्वाभाविकता की दृष्टि से यह शैली अधिक उपयुक्त है।

तृतीय कोटि में एक बृहद् कथा-भाग को फ्लैश बैक शैली में समाविष्ट करने की चेष्टा होती है। 'नदी फिर बह चली' में कथा का प्रारम्भ परबतिया की डोली के उठने के साथ होता है। डोली के उठने से लेकर परबतिया के श्वसुर-गृह में प्रवेश तक की घटना के समानान्तर फ्लैश बैक के द्वारा परबतिया की शैशवकालीन घटनाओं को २१४ पृष्ठों तक उपन्यासकार ने अंकित की हैं। उसके बाद की लगभग आधी कथा वर्णनात्मक ढंग से लिखी गयी है। डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'दिल एक सादा कागज़' में 'जैदी बिला का भूत' और 'दर्द की पहली लकीर' नामक दो प्रकरणों के बाद पृ० ४५ के उपरान्त इस शैली को लिया गया है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' का भी प्रथम भाग फ्लैश बैक में है। यहां भी

---

१. 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास' : पृ० ४२२।

प्रथम की भांति प्रारम्भिक और अन्तिम घटना को सन्दर्भित कर अन्य विधियों का आश्र: आश्रय ग्रहण किया जाता है। डा० धनराज मानधाने के मतानुसार " अपनी प्रभात्मकता और चमत्कारिता के कारण ही यह शैली अन्य शैलियों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गई है। वर्तमान में चलती हुई कथा को झट से अतीत की ओर मोड़कर तथा महत्वपूर्ण सन्दर्भों में उसे क्रमबद्ध कर, उपन्यासकार अपने पाठकों के लिए बड़ा आकर्षण निर्माण करते हैं।"[1]

(3) शब्दसहस्मृति (word-association) : यह एक मनोवैज्ञानिक टैकनिक है जिसका उपयोग एक तो पात्रों की अचेतन मन की गुत्थियों को खोलने तथा उसकी मानसिकता को पकड़ने के लिए होता है। पात्र जिन शब्दों को सुनकर या पढ़कर चौंक पड़ता है, उनके सहारे पात्र की मानसिक उलझनों को पकड़ने का यत्न किया जाता है। दूसरे शब्द या पात्र के साथ जुड़ी हुई स्मृतियां चरित्र या अतीत की किसी घटना को भी उद्घाटित करती हैं। 'आगामी अतीत' की चांदनी 'बच्ची' शब्द को सुनकर आपे से बाहर हो जाती है क्योंकि अतीत में 'बच्ची बच्ची' कहकर बाबूलाल नामक एक एक व्यक्ति ने उस पर बलात्कार किया था जिसने उसके जीवन को धुरी को ही बदल दिया था। उसी प्रकार 'पोलिटिकल सैक्रेटरी' का नाम सुनते हुए 'अन्धेरे बन्द कमरे' का मधुसूदन सुषमा के साथ स्वर्ग की सैर करना छोड़कर कठोर धरती पर उतर आता है क्योंकि मधुसूदन को 'पोलिटिकल सैक्रेटरी' से चिढ़ होती है। विवाह के कारण 'बैसाखियोंवाली इमारत' के पत्रकार की जिन्दगी तबाह हो गई थी। अत: विवाह का नाम लेते ही उसकी आंखों के सामने पत्नी के साथ गुजारे हुए दिनों की कटु स्मृतियां घूम जाती हैं और फिर वह किसी नारी के साथ ठहर नहीं सकता।

इमरतिया' में माई इमरतीदासी नामक सधुआइन सोचती है : " मैं मस्तराम के साथ निकलूंगी। मुझे छोड़कर वह अकेले नहीं जा सकता। मैं उसकी राह देखूंगी। उसको मैं जमनिया के मठ में नहीं रहने दूंगी। हम दोनों इस नरक से साथ-साथ छुटकारा पाएंगे।"[2] इस छुटकारा शब्द के साथ ही उसे लक्ष्मी का विचार आता है : " बेचारी लक्ष्मी। उसने जहर खाकर इस नरक से छुटकारा पाया था न ?"[3] इसके पश्चात् उसके चिदाकाश में लक्ष्मीवाली सारी घटना बिजली की तरह कौंध जाती है। इसी प्रकार उपन्यास के एक पात्र गारी का नाम आते ही

1. 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास': पृ. ४२२। 2. 'इमरतिया': पृ. २४।
3. वही, पृ. २४।

उससे सम्बन्धित सारी बातें इमरतीदास के मनोमस्तिष्क में उभरती हुई बतायी गयी हैं।[1] रेणु के उपन्यास 'जुलूस' में पाट के खेत में साग खोंटनेवाली औरतों को देखते ही जयराम को 'कामदेव चौधरी बनाम मुड़ली मुसहरनी' वाले केस की याद आ जाती है क्योंकि मुड़ली मुसहरनी ऐसे ही अकेली पाट का साग तोड़ रही थी।[2] 'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने 'चाबुक' शब्द के द्वारा कमल बोस की पिछली जिन्दगी के पृष्ठ को खोलने का कार्य किया है। एम० बी० बी० एस० में फर्स्ट आने पर चन्द्रमोहन सेन कमल को अपना दामाद बनाना चाहते हैं। कमल एक तरफ चन्दा के प्रति प्रतिबद्ध था तो दूसरी तरफ चन्द्रमोहन सेन द्वारा सफलता के शिखरों को सर करना चाहता था। उसमें चन्दा के लिए द्वन्द्व था, परन्तु सेन साहब की 'आगे तुम खुद ही सोच लो' वाली निस्पृहता उसे चाबुक की तरह लगती है : 'सेन साहब की यह 'खुद ही सोच लो, यह तुम्हारा जाती मामला है' वाली बात ही सबसे खतरनाक थी। आज जब समझ में सबकुछ आता है, तो उनकी यह बात उदारता या शालीनता का आभास नहीं देती बल्कि साज़िश भरे चाबुक की तरह लगी हुई लगती है, जिसने कमल बोस की जिन्दगी की दिशा बदल दी थी... उस वक्त वे कमल बोस नहीं रह गये थे... सफलता की दौड़ में शामिल एक घोड़े थे और चन्द्रमोहन सेन का यह चाबुक ऐन वक्त उनकी पीठ पर पड़ा था।'[3]

उसी प्रकार 'अन्धेरे बन्द कमरे' में 'मुगलकाल के नोट्स' के सम्बन्ध में पत्रकार मधुसूदन को मियां की टोडी की स्मृति हो आती है और वहां से मुगलकालीन ऐतिहासिक दृश्यों का एक सिलसिला प्रारम्भ होता है जो पांच-छः पृष्ठों तक चलता है।[4] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चरित्र-सृष्टि एवं कथा-शिल्प दोनों दृष्टियों से शब्दसहस्मृति का महत्व है।

(४) अन्तर्विवाद : पूर्ववर्ती विवेचन में पात्र-परिकल्पना के परिप्रेक्ष्य में अन्तर्विवाद की चर्चा की गई है। यहां उसके शिल्प-पक्ष पर संक्षेप में विचार किया जायेगा। आधुनिक युग का शिक्षित व्यक्ति अधिकाधिक सिमटता जा रहा है। यान्त्रिक जीवन के सम्प्रेषण से मनोवैज्ञानिक गुत्थियों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। फलतः 'मैन इन एक्शन' की

---

१. 'इमरतिया' : पृ० २७। २. 'जुलूस' : पृ० ८४। ३. 'आगामी अतीत' : पृ० ५६। ४. 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० २८०-२८६।

तुलना में 'मैन इन कन्टेम्पुलेशन' का चित्रण साहित्य की सभी विधाओं में हो रहा है। अन्तर्विवाद इस प्रकार के चित्रण में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। जो स्थान नाटकों में स्वगतोक्तियों का है वही उपन्यासों में अन्तर्विवादों का है। इनसे चरित्र के अचेतन मन की गुत्थियाँ ही नहीं सुलझती, प्रत्युत उपन्यास में नाटकीयता का समावेश भी हो जाता है। जो कार्य प्रेमचन्द या प्रेमचन्द स्कूल के अन्य साहित्यकार कभी चरित्र के मनोविश्लेषण द्वारा करते थे, उसी को आज का उपन्यासकार अन्तर्विवादों के द्वारा कर रहा है। पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक उपन्यास शनैः शनैः अनासन्न लेखकत्व की ओर बढ़ रहा है। अन्तर्विवाद इस प्रकार के लेखन में साधनरूप हो रहा है। किन्तु यहां एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि उपन्यास में अन्तर्विवादों का आधिक्य इसकी स्वाभाविकता को को व्याघात पहुंचा सकता है; सिवाय कि उपन्यासकार का उद्देश्य किसी पागल व्यक्ति का चित्रण न हो।

'अन्तराल', 'सीमाएं टूटती हैं', 'बैसाखियोंवाली इमारत', 'अठारह सूरज के पौधे', 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'अनदेखे अनजान पुल', 'तमस', 'उग्रतारा', 'इमरतिया', प्रभृति उपन्यासों में अन्तर्विवादों का प्रयोग बहुतायत से मिलता है। पूर्ववर्ती विवेचन में इस विधि के कुछ उदाहरण दिए गए हैं, अतः यहां उसकी पुनरावृत्ति करना उचित नहीं है।

<u>(५) अन्तर्भ्रमणा</u> : व्यक्ति के आन्तरिक चित्रण में अन्तर्भ्रमणा का भी सविशेष महत्त्व है। अन्तर्विवाद में जहां व्यक्ति अपने आप या मन में बातें करता है, वहां इसमें व्यक्ति अपने या किसी अन्य पात्र के सम्बन्ध में भ्रामक कल्पनाएं करता रहता है। कई बार व्यक्ति जीवित रहते हुए भी अपनी मृत्यु का विचार कर उसके बाद के दृश्यों एवं परिणामों की कल्पना कर लेता है। मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' उपन्यास में इसका एक बढ़िया उदाहरण मिलता है :

'फिर वही कौंध। चेतना के स्तर पर दिन के अखबार की दो छोटी-छोटी सुर्खियाँ।... वर्ली सी फेस पर एक युवा स्त्री की आत्महत्या। सचिवालय में एक सरकारी अफ़सर की हृदय-गति रुक जाने से मृत्यु। एक सफेद टेबल पर सफेद कपड़े से ढकी दो लाशें। स्त्री का चेहरा श्यामा का। सरकारी अफ़सर का उसका अपना।... दिमाग में फिर वही आभास... इस बार नीलकान्त के चेहरे के साथ। नीलकान्त सरकारी अफ़सर के साथ-साथ चल रहा है।

दाह-कर्म से लौटकर चाय पिएगा । रूबी के साथ कैन्टीन में । रूबी के स्कर्ट को छूकर उसके रंग की प्रशंसा करेगा ।... वर्ली सी फेस पर ऊंची उठती लहरें । लहरों में डूबता-उतराता शरीर । सी-फेस के साथ-साथ कारों की लम्बी पंक्ति । शरीर एक एम्बुलेंस में डाला जा रहा है । ट्रैफिक की भीड़ में से एम्बुलेंस तेज़ी से गुज़रती जाती है । श्यामा अपने बेबस हिलते शरीर को देखकर डरी हुई है । वह एम्बुलेंस के दरवाज़े पर दस्तक दे रही है... मुझे अपना पोस्ट-मार्टम नहीं चाहिए । ... पोस्ट-मार्टम के लिए ले जाया जाता शरीर सरकारी अफ़सर का है । अर्थात् उसका अपना । साथ तीन लड़के हैं । ये लड़के किसी की औलाद हैं । एक लड़का कह रहा है ... बाबा दफ़्तर की कैबिन में स्टेनो को डिक्टेशन दे रहे थे जब अचानक... ।"[१]

उपर्युक्त उदाहरण एक साथ ही कुमार की चेतना के कई स्तरों को खोलता है : (१) अपने जीवन से सम्बन्धित कुण्ठा-निराशा, (२) मरने की तीव्र इच्छा, (३) श्यामा के प्रति लगाव, (४) नीलकान्त के प्रति घृणा व ईर्ष्या का भाव, (५) रूबी के प्रति प्रच्छन्न संमोहन आदि । तात्पर्य यह कि औपन्यासिक शिल्प की यह विधि भी आन्तरिक व्यक्तित्व को सम्प्रेषित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

<u>(६) नाटकीयता का समावेश :</u> आधुनिक हिन्दी उपन्यास-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि शनैः शनैः उपन्यासकार उपन्यास से तिरोहित हो रहा है । आज का उपन्यासकार अनासक्त लेखकत्व की ओर बढ़ रहा है । उसे अपने पाठकों की प्रबुद्धता पर पूरा विश्वास है । वह जहांतक हो सके स्वयं को उपन्यास से दूर रखने की सचेतनिक चेष्टा करता है । इसीलिए टी० डब्ल्यू० बीच ने अपनी पुस्तक 'दी ट्वेन्टीएथ सेन्च्युरी नॉवेल' में एक अध्याय का नाम ही 'एक्जिट आथर' अर्थात् लेखक गायब' रखा है । जो इसी प्रवृत्ति का सूचक है । फलतः आज का उपन्यास अधिकाधिक नाटकीय होता जा रहा है । वस्तु एवं परिवेश की परिमितता, संकलन-त्रय, अन्तर्द्वन्द्व, क्षिप्रता का आग्रह, संवाद-प्रधानता प्रभृति लक्षणों के कारण उसे नाटकीय उपन्यास (ड्रामेटिकल नावेल) भी कह सकते हैं । नाटकीय उपन्यास उपन्यास में नाटक की सम्भावनाओं को उद्घाटित करने-

---

१. 'अन्तराल' : पृ० ८८१-८८२ ।

वाले उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में वस्तु एवं पात्रों की सन्निकटता देखते बनती है। पात्र कार्यों का निर्माण करते हैं और कार्य पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व को उजागर करते हैं। वस्तु, कार्य एवं समय का फलक छोटा होता है, फलतः एकाग्रता उब- एवं तीव्रता अधिक होती है। 'सूरजमुखी अन्धेरे के', 'मत्रो मरजानी', 'वे दिन', 'अन्तराल', 'मुक्तिबोध', 'इमरतिया', 'डाक बंगला', प्रभृति उपन्यासों में हम यह प्रवृत्ति लक्षित कर सकते हैं।

(७) लघु-उपन्यास : शिल्प संरचना : आधुनिक युग की यान्त्रिक आपाधापी ने बृहद् उपन्यासों की तुलना में लघु-उपन्यासों में को विकसित होने में अधिक योग दिया है। वस्तु जब कहानी से बृहद् एवं उपन्यास से लघु हो जाती है तब वह लघु-उपन्यास का स्वरूप ग्रहण करती है। उदाहरणार्थ रेणु का 'मैला आंचल', 'परती : परिकथा' उपन्यास हैं; 'कितने चौराहे', 'जुलूस' आदि लघु-उपन्यास हैं और तीसरी कसम लम्बी कहानी। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव कृत 'अनदेखे अनजान पुल' लघु उपन्यास और 'प्रतीक्षा' लम्बी कहानी है।

डा० विनय मोहन शर्मा के अनुसार "कहानी और उपन्यास के उपादानों में कोई अन्तर नहीं है -- दोनों में कथा होती है, पात्र होते हैं, देश-काल की सीमा होती है और दोनों ही उद्देश्य की ओर अभिमुख रहते हैं। अन्तर इतना ही है कि एक (कहानी) में संक्षिप्तता रहती है और दूसरे में विस्तृति। पर कुछ उपन्यास ऐसे भी होते हैं जो जीवन की व्यापकता का बन्धन भी स्वीकार नहीं करते, वे जीवन के एक अंग का ही तनिक विस्तार पाकर उपन्यास बन जाते हैं। इन्हें अंग्रेजी में 'नावलेट' और हिन्दी में लघु-उपन्यास कहते हैं। इनमें पात्रों की संख्या बहुत कम होती है, उनका संकेतात्मक चरित्रांकन होता है। वातावरण के घटाटोप से कथा बोझिल नहीं हो पाती। उसकी घटना बहुत छोटी और बहुत मामूली भी हो सकती है।"[1]

डा० विनय मोहन शर्मा ने कथा के आधार पर कहानी, लघु-उपन्यास और उपन्यास में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। यह अन्तर

---

१. 'हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और विवेचन' : सं० महेन्द्र चतुर्वेदी, डा० मक्खनलाल शर्मा : पृ० ५।

लघु-उपन्यास विधा के अस्तित्व का साक्ष्य तो है लेकिन उसका पूर्ण विवेचन नहीं। डा० घनश्याम 'मधुप' के मतानुसार "वास्तव में हिन्दी 'लघु-उपन्यास' अंग्रेजी 'नावलेट' का पर्यायवाची शब्द न होकर सर्वथा स्वतन्त्र शब्द है। प्रारम्भ में छोटे उपन्यासों की आकारगत लघुता के लिए 'नावलेट' के समानार्थी शब्द 'लघु-उपन्यास' का प्रयोग किया गया। अंग्रेजी कथा-साहित्य में अभी तक 'शार्ट स्टोरी', 'लाँग टेल' एवं 'नावेल' धाराएं ही प्रचलित हैं। 'नावेलेट' शब्द अपेक्षाकृत अपेक्षाकृत छोटे 'नावेल' के लिए प्रयुक्त होता है। वह कोई विधा नहीं है जबकि लघु-उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य की अपनी एक विधा है।"[1] किन्तु डा० घनश्याम 'मधुप' के इस स्वतन्त्र विधा से सम्बन्धित मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता। लघु-उपन्यास के अस्तित्व और शक्ति को सकारते हुए भी उसे उपन्यास का एक रूप ही मानना चाहिए। उपन्यास तो आखिर उपन्यास है, चाहे लघु हो या बृहद्। जहां बृहद् उपन्यास अपनी समग्रता और सम्पूर्णता को लेकर मन्द और मन्थर गति से जीवन-पथ पर चलता है। जीवन और समाज की कई समस्याओं का उसमें निदान रहता है। वहां लघु उपन्यास तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर चलता हुआ सूक्ष्म और संवेदनाजन्य सघन चित्रात्मकता प्रस्तुत करता है। डा० घनश्याम 'मधुप' के शब्दों में "उसमें कथा की एकतानता, गाढ़ बन्धत्व, भाषा और शैली के रूप में सांकेतिकता तथा नाटकीय प्रभावोत्पादकता का होना अनिवार्य है।"[2]

संचेतना त्रैमासिक के 'समकालीन उपन्यास अंक' (१९७१) में डा० देवेन्द्र इस्सर ने 'आधुनिक हिंदी उपन्यास : एक परिचर्चा' का संयोजन किया था जिसमें एक प्रश्न लघु-उपन्यास से सम्बन्धित था। यहां हम उस अंश को संकलित करनेका प्रयास कर रहे हैं :

(अ) " 'लघु-उपन्यास' अपने आप में एक विधा है। जो काम कहानी से नहीं हो सकता, जो 'उपन्यास' से नहीं हो सकता -- वह इसके द्वारा किया जाये ऐसी अपेक्षा से यह शुरू हुआ था। दुर्भाग्य से दीर्घ-कथाओं को को ही यार लोग लघु-उपन्यास कहने लगे। हिन्दी में इधर काफी तरह के लघु-उप-न्यास छपे हैं। मैंने इधर कम से कम एक दर्जन पढ़े होंगे। पर सन् '५० में जब मैंने

---

१. 'हिंदी लघु-उपन्यास' : पृ० ४६।
२. वही : पृ० ६८।

'परन्तु लिखा था, तब बहुत कम थे। सभी पुराने लेखक भी ' लुघू- लघु-उपन्यास' लिखने लगे हैं : जैनेन्द्रजी का ' मुक्तिबोध', अज्ञेय का ' अपने अपने अजनबी', यशपाल का ' क्यों फंसे ?', नागार्जुन का ' इमरतिया' इत्यादि। और बाद की पीढ़ी में भारती का ' सूरज का सातवां घोड़ा', कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, श्रीकान्त वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, गिरिराज किशोर आदि के आदि के कई लघु-लघुतर-लघुत्तम उपन्यास क्षप रहे हैं। पर उनकी ' लघुता' का कोई ' जस्टिफिकेशन' उन उपन्यासों में नहीं है। केवल कहानी का प्रलम्बित रूप ही कहीं मिलता है। शायद युग ही अब ' श्वासों की लघुता' का, मिनी' कपड़ों और मिनी लेखन का है। बौना युग, बौनी सक्सिल्खि- साहित्य-विधाएं ? एक तरह से विडम्बना है, एक तरह से देखें तो अच्छा है, पाठक बोरियत से बचता है। पाठक के हक में चुनाव के लिए अधिक मौका है।'[१]

(ब)' लघु-उपन्यास, कहानी और उपन्यास दोनों के बीच की चीज़ है। ऐसे कहानी का विस्तार मात्र नहीं कहा जा सकता। वे उपन्यास हैं, लेकिन छोटे।'[२]

(क)' उपन्यास उपन्यास होता है। ' लघु' या ' बृहत्' का विशेषण उसके साथ जोड़ना मुझे उचित नहीं लगता। मेरी दृष्टि में टाल्स्टाय का ' वार एण्ड पीस' और कामू का ' द फाल' दोनों ही उपन्यास हैं। परन्तु हिन्दी में बहुत-सी कथा-कृतियां जो लघु-उपन्यास के नाम से प्रकाशित होती हैं, वास्तव में कहानी का विस्तार ही होती हैं। उपन्यास में यदि मानव-जीवन और मानव-नियति अपने व्यापक रूप में प्रदर्शित नहीं होती तो मेरे विचार में उसे उपन्यास की संज्ञा देना सही नहीं हो सकता।'[३]

उपर्युक्त मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्वानों तथा रचनाकारों में इस विषय को लेकर मतैक्य नहीं है। यहां संक्षेप में लघु-उपन्यास' विषयक अपनी मान्यताएं हम रख रहे हैं : (१) लघु-उपन्यास स्वतन्त्र विधा न होकर उपन्यास का ही एक रूप या प्रकार है। (२) आकार की दृष्टि से वह बृहत् उपन्यास और लम्बी कहानी के बीच की वस्तु है। (३)

---

१. डा० प्रभाकर माचवे :' संचेतना त्रैमासिक' (१९७१) : पृ० १६ ।

२. भीष्म साहनी : वही : पृ० २३ ।

३. बदी उज़्ज़मां : वही : पृ० २७ ।

उसमें एकतानता, तीव्रता, सांकेतिकता एवं नाटकीय प्रभावोत्पादकता प्रभृति गुण निहित रहते हैं। (४) लघु-उपन्यास भी उपन्यास की भांति सामाजिक, समाजवादी, आंचलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि हो सकता है। (५) पात्रों एवं घटनाओं की परिमितता उसमें रहती है, किन्तु आंचलिक लघु-उपन्यास में पात्र-बहुलता भी देखने में आती है, यथा 'जुलूस'। (६) जहां बृहत् उपन्यास में एकाधिक पात्रों का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है, वहां लघु-उपन्यास में प्राय: किसी एक ही पात्र का व्यक्तित्व पूर्ण विकसित रूप में उपलब्ध होता है, यथा -- 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा, 'छाया मत छूना मन' की वसुधा, 'सांप और सीढ़ी' की धान मां, 'डाक बंगला' की इरा, आगामी अतीत के डा० कमल बोस आदि।

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त आलोच्य काल के 'अपने अपने अजनबी', 'एक सड़क सत्तावन गलियां', 'बारह घण्टे', 'अनदेखे अनजान पुल', 'रुकोगी नहीं राधिका ?', 'अठारह सूरज के पौधे', 'एक घिसा हुआ चेहरा', 'महाश्रमण सुनें उसकी परम्पराएं सुनें', 'मछली मरी हुई', 'वे दिन', 'बबूल', 'नदी और सीपियां', 'आंखों की देहलीज', 'उग्रतारा', 'इमरतिया', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अन्धेरे के', 'कथा चक्र', 'रानी नागफनी की कहानी' प्रभृति उपन्यास इस विधा के प्रमुख उपन्यासों में हैं।

(८) <u>औपन्यासिक प्रकार और शिल्पगत आयाम</u> : उपर्युक्त विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि लघु-उपन्यास का शिल्प बृहत् उपन्यासों से थोड़ा भिन्न प्रकार का है। एक ही उपन्यासकार की दोनों प्रकार की कृतियों को एक साथ देख जाने से यह अन्तर भलीभांति स्पष्ट हो जाता है, यथा -- डा० रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' और 'सूखता हुआ तालाब'; शानी के 'काला जल' और 'सांप और सीढ़ी'; मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' और 'अन्तराल' प्रभृति क्रमश: बृहत् एवं लघु-उपन्यास। इसी प्रकार ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक प्रभृति उपन्यासों की शिल्प-संरचना में कुछ न कुछ अन्तर तो आता ही है जिसका विस्तृत विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुका है।

(९) <u>समानान्तर कथा-प्रवाह</u> : कृषक जीवन के महाकाव्य 'गोदान' में ग्राम्य एवं नगरीय परिवेश को लेकर दो स्पष्ट कथा-प्रवाह मिलते हैं। 'रंगभूमि' में सोफिया

और किय की प्रेमकथा एवं सूरदास और जान सेवक का संघर्ष साथ-साथ चलता है। प्राय: बड़े उपन्यासों में ऐसे समानान्तर कथा-प्रवाह दृष्टिगोचर होते हैं जो समाज एवं जीवन के व्यापक मानचित्र के लिए आवश्यक भी है। यहां एक बात ध्यातव्य है कि यह समानान्तर चलनेवाले कथा-प्रवाह एक दूसरे से जुड़े हुए एवं परस्पर को गति देने वाले होने चाहिए। उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध भी होना चाहिए। मोहन राकेश के `अन्धेरे बन्द कमरे` में जहां एक ओर हरबंस और नीलिमा के परिवेश द्वारा महानगरीय शिक्षित भद्र समाज को चित्रित किया गया है वहां दूसरी ओर दिल्ली की दरिद्र, भयावह और अन्धेरी बस्तियों से भी लेखक की दृष्टि गुज़री है। श्रीकान्त वर्मा ने इन दोनों प्रवाहों के लिए `ड्राइंग रूम` और `सड़क` जैसे प्रतीकात्मक शब्दों को लेकर यह टिप्पणी दी है कि मोहन राकेश का ड्राइंग रूम कुछ दूर चलकर सड़क में परिणत हो जाता है।[१] परन्तु यहां लेखक का उद्देश्य विरोध के इन दोनों छोरों को संपृक्त करना है। उसने जहां एक ओर `ड्राइंग रूम की घुटन, ऊब और एकरसता को तीव्रता से सम्प्रेषित किया है वहां `सड़क` के जीवन के उस रूप को रखा है जिसके रहते पहले की निरर्थकता अपने आप सिद्ध हो जाती है। अन्ततोगत्वा इस उपन्यास की समग्र ध्वनि यशपाल की `दु:ख` कहानी से मिलती-जुलती है। अत: श्रीकान्त वर्मा का उक्त आरोप बेमानी है। वस्तुत: उपन्यास का `नैरेटर` पत्रकार मधुसूदन ही वह पुल है जो इन दो विरोधाभासी प्रवाहों को जोड़ता है। उपन्यास में जिन गन्दी बस्तियों का फोटोग्राफिक वर्णन उपलब्ध होता है उसके लिए भी लेखक ने तर्कसंगत कारण दिये हैं। मधुसूदन को अपने पत्र के प्रधान सम्पादक की ओर से उन बस्तियों पर रिपोर्ट तैयार करने की आज्ञा मिली है, दूसरे वह स्वयं पहले उन जैसी बस्तियों में रह चुका है।

लक्ष्मीकान्त वर्मा के उपन्यास `टेराकोटा` में नाटकीय विधान की रचना मिलती है और एक साथ तीन कथा-प्रवाह समानान्तर चलते हैं जिसके लिए उन्हें `फैण्टसी` का आधार भी लेना पड़ा है। कथाचक्र जहां एक ओर रोहित, मिति और उसके परिवार के आसपास मडराता है वहां दूसरी ओर महाभारतोत्तर पात्रों पर आधारित सामन्त रोहिताश्वं और मित्रिता का नाट्य चलता है।

---

१. `विवेक के रंग` : सं० डा० देवीशंकर अवस्थी : पृ० २८६।

तीसरी और गणेश-व्यास संवाद में इन दोनों प्रवाहों के विषय में आलोचनात्मक सम्भाषण मिलते हैं। तीनों का निर्वाह लेखक कुशलतापूर्वक कर सका है।

अमृतलाल नागर के `अमृत और विष` उपन्यास में भी दो कथा-प्रवाह साथ-साथ चलते हैं क्योंकि उपन्यास के नायक अरविन्दशंकर स्वयं उपन्यासकार हैं। अतः नायक अरविन्दशंकर एवं उनके उपन्यास की कथा यह दोनों प्रवाह समानान्तर चलते रहे हैं जिसमें लेखक ने कहीं कहीं आत्मसम्भाषणात्मक शैली का प्रयोग भी किया है।

ओमानन्द सारस्वत के उपन्यास `अनसुलफी गांठें` में दो कथा-प्रवाहों को समानान्तर लिया तो गया है और आरम्भ तथा अन्त में इन्हें जोड़ने का प्रयास भी किया गया है परन्तु इन दोनों प्रवाहों को क्रमागत रूप से एक के बाद एक समान प्रकरणों में विभक्त करने से अस्वाभाविकता आ गयी है तथा कथा के प्रवाह और कथारस को भी व्याघात पहुंचा है।

(१०) प्रासंगिक कथाओं का संयोजन : नाटक में आनेवाली प्रकरी के समान उपन्यास में कई प्रासंगिक कथाओं को संयोजित किया जाता है। यह प्रासंगिक कथाएं उपन्यास के तेवर व मुहावरे के अनुरूप होती हैं। कई बार प्रासंगिक कथा के रूप में किसी अन्य प्रसिद्ध लेखक की कहानी के सारांश को भी दिया जाता है। मोहन राकेश के उपन्यास `अन्तराल` में श्यामा कुमार को कृश्न चन्दर की `प्रीतो` नामक एक कहानी की याद दिलाती है जिसमें एक बूढ़ा जाट अपनी पत्नी प्रीतो की बेवफाई के कारण उसके प्रेमी की और बहुत वर्षों के बाद प्रीतो के सामने अनायास उसका रहस्य प्रकट हो जाने से उसकी भी हत्या कर देता है।[१] श्यामा और कुमार दोनों साहित्यिक अभिरुचि संपन्न हैं। दोनों अपनी-अपनी व्यक्तिगत विगत जिन्दगी के दायरे में कैद है। इसके उपरान्त शहर से दूर खेतों में रहँट के पासवाली कोठरी में बिछी हुई चारपाई को श्यामा देखती है। अतः वातावरण की समानता के कारण भी उसे कृष्ण चन्दर की उस कहानी का स्मरण हो आना स्वाभाविक है।

इसके विपरीत `नदी फिर बह चली` में ग्रामीण परिवेश है जहां अपने पति से से छिपकर अच्छा खाना बनाकर खा लेनेवाली सुगिया के सन्दर्भ

---

१. `अन्तराल` : पृ० ७२।

में ग्राम्य-परिवेश के अनुरूप प्रासंगिक कथा आयी है। एक किसान धनोपार्जन के लिए बाहर जाता है। वहाँ से कुछ रूपये वह प्रतिमास अपनी पत्नी के पास भेजता है। घर में सास-ससुर-ननद-देवर कोई नहीं है। अत: वह दोनों जून खीर-पूड़ी बनाती। चौका देकर रसोई परोसती और पानी लेकर, पीढ़े पर बैठकर आँखें मूंदकर कहती --

सास ना ननद
घर अपने अनन्द,
मटकाई ?"

फिर वह खुद जवाब देती -- " मटकाई।" और वह खीर-पूड़ी खाने लगती। बगल की पड़ोसिन ने यह सब देख लिया था। जब वह किसान लौटा तो पहले उसे उसी पड़ोसिन से भेंट हो गई तो उसने सबकुछ कह दिया। किसान अपने घर जाकर छिप गया। जब उसकी पत्नी खीर-पूड़ी बनाकर उपर्युक्त बात कहकर 'मटकाई' कहने जाती है तब किसान लाठी लेकर प्रकट हो जाता है और कड़ककर बोलता है :

" सास ना ससुर
घर अपने असुर
धबकाईं ?"[१]

ग्रामीण लोगों के पास दैनिक जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेकों कहानियाँ होती हैं।

'राग दरबारी' अपनी व्यंग्यात्मक ध्वनि के लिए प्रतिष्ठित है, अत: उसमें जो प्रासंगिक कथाएं आयी हैं वे व्यंग्य का पुट लिए हुए हैं। सनीचर द्वारा वर्णित दूरबीनसिंह डकैत की दोनों कहानियाँ हास्यरस की सृष्टि करती हैं।[२] चुनाव जीतने के तीन फार्मूलाओं से सम्बन्धित तीन कहानियाँ -- रामनगर -वाली, नेवादावाली और महिपालपुरवाली --- चुनाव के आधुनिक हथकण्डों को उद्घाटित करती हैं जिनमें प्रथम 'पैटेंट' में दंगा-फसाद के द्वारा, दूसरी में साधु-महात्मा को बीच में लाकर तथा तीसरी में अधिकारियों को अपने पक्ष में मिलाकर चुनाव जीते जाते हैं।[३] न्यायतन्त्र के सन्दर्भ में एक कथा 'कोढ़िल्ला न्याय' के सम्बन्ध में मिलती है। एक नवाब साहब का शाहजादा जब किसी प्रकार ठीक न हुआ तो अन्त में एक बुजुर्ग हकीम एकान्त में बेगम साहिबा से पूछते हैं :

---

१. 'नदी फिर बह चली' : पृ० १२८-१२६। २. 'राग दरबारी' : पृ० ७०-७५।
३. देखिए : वही : पृ० २६२-२७१।

" देखिए बेगम साहिबा, अगर शाहजादे की जान प्यारी हो तो साफ़-साफ़ बता-इए, यह शाहज़ादा किसका लड़का है ? किसके नुत्फ़े से पैदा हुआ है ?" बेगम साहिबा आसू बहाते हुए कहती हैं : "किसी से कहियेगा नहीं। पर असलियत यही है कि शाहज़ादा महल में काम करनेवाले एक भिश्ती का लड़का है। मुआ ताज़ा-ताज़ा दिहात से आया था, और मालूम नहीं कि कैसे क्या हुआ कि ..."[2] इतना सुनते ही हकीम साहब ने शाहज़ादे की आंखों पर पानी के छींटे मारे और कहा, "अबे उठ। भिश्ती की औलाद।"[3] बस चौंककर शाहज़ादे ने आंख खोल दी। उसके बाद हकीम ने मैदान में जाकर कौड़िल्ला के कुछ पौधे उखाड़े और उन्हें पानी में पीसकर शाहज़ादे को पिला दिया। तीन दिन तक इसी तरह कौड़िल्ला पीकर शाहज़ादा चंगा हो गया।[4]

इससे स्पष्ट है कि पात्र एवं परिवेश के अनुरूप प्रासंगिक कथाओं के संयोजन से उपन्यास का शिल्प निखर उठता है।

(११) भाषा : उपन्यास के रचना-संविधान में भाषा का महत्व अक्षुण्ण है। आगे एक स्वतन्त्र अध्याय भाषा-शैली पर दिया गया है, परन्तु भाषा उपन्यास के शिल्प का एक आयाम होने से यहां संक्षेप में उस पर विचार किया जा रहा है। एक ही उपन्यासकार शिल्प-संरचना की दृष्टि से भाषा के अलग-अलग रूपों को अंगीकृत करता है जिसे हम निम्नलिखित उपन्यास-युग्मों में दृष्टिगत कर सकते हैं : 'आधा गांव' और 'दिल एक सादा कागज़' (डा० राही मासूम रज़ा) ; 'राग दरबारी' और 'सीमाएं टूटती हैं' (श्रीलाल शुक्ल) ; 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अन्धेरे के' (कृष्णा सोबती) ; 'काला जल' और 'सांप और सीढ़ी' (शानी) ; कई बार एक ही उपन्यास में भी भाषा के एकाधिक स्तर दृष्टिगोचर होते हैं, उदाहरणार्थ मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' में जहां मुगलकालीन परिवेश को लिया गया है वहां भाषा में उर्दू तथा अरबी-फारसी के शब्दों की बहुतायत ही नहीं मिलती, प्रत्युत उसका लहजा भी बदल गया है।[5]

---

१. 'राग दरबारी' : पृ० ८८६। २. वही : पृ० ८८६। वही : पृ० ८८६।
४. वही : पृ० ८८६-८८७।
५. देखिए : 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० ८८०-८८५।

'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक उपन्यास है, अत: उसका भाषिक मुहावरा हास्य-व्यंग्य से भरपूर है। अनेक स्थानों पर उसमें परम्परा से प्रचलित शब्दों को व्यंग्य-विदग्धता के- से प्रयुक्त किया गया है, उदाहरणार्थ 'भरत-मिलाप' शब्द का प्रयोग यहां 'माराकाटी' के अर्थ में हुआ है : (१) 'मास्टर साहब, जांच-वांच से कुछ नहीं होगा। सीधा रास्ता वही है। अगर आप हुकुम दें तो किसी दिन यहीं अन्धेरे-उजेले में प्रिंसिपल साहब का भरत-मिलाप करा दिया जाय।'[१] (२) 'डिप्टी डायरेक्टर न माने और जांच करने आयें तो उनका भी किसी से भरत-मिलाप करा देंगे।'[२] उसमें और कहावतें-मुहावरे भी उसी प्रकार के दिये गये हैं -- 'शहर का आदमी है। सुअर का-सा लेंड -- न लीप के के काम आये न जलाने के।'[३] एक और उदाहरण -- 'कुसहर ने कहा, 'कल के जोगी, चूतड़ तक जटा। सनीचर को देखो, देखते-देखते मंगलप्रसाद बन गये।'[४]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'चारु-चन्द्रलेख' ग्यारहवीं शताब्दी के ऐतिहासिक परिवेश को सामने लाता है अत: उसकी उसका भाषिक रचाव संस्कृत एवं प्राकृत अपभ्रंश साहित्य की छाया लिए हुए है।

'मुरदा घर' में बम्बई की झोंपड़पट्टी के जीवन को रूपायित करने की चेष्टा हुई है, अत: उसकी भाषा बम्बइया ढंग लिए हुए है। 'छोकरा', 'भोत', 'मेरेकू', 'इधरिच', पीकू पीकू', 'वोका वोच', 'आक्खा', पसन्त', 'टैम' जैसे अनेक बम्बइया शब्दों का प्रयोग उसमें मिलता है। इस भाषायी प्रयोग द्वारा क्षेत्र-विशेष का वातावरण सजीव होकर उभरा है जिस पर आगे विस्तार से विचार किया जायेगा।

आलोच्य युग के उपन्यासों के शिल्पगत अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिल्प की श्रेष्ठता उपन्यास के कथ्य को अधिक प्रभावोत्पादक बना देती है, परन्तु रचनाकार की मूल पूंजी तो मानवीय संवेदना और उसे प्रगाढ़ जीवनानुभवों की गम्भीरता है। उसके अभाव में केवल शिल्प के बल पर खड़ी होने वाली रचनाएं चमत्कृत तो कर सकती हैं प परन्तु पाठक पर अपना कोई अमिट प्रभाव नहीं छोड़ सकती। रचनाओं के सन्दर्भ में द्वितीय उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आलोच्य

---

१. 'राग दरबारी' : पृ० ४०२। २. वही : पृ० ३६४। ३. वही : पृ० ३६४। ४. वही : पृ० ३५५।

कृतियां शिल्पगत वैविध्य को प्रकाशित करती हैं और साथ ही इस विधा को आजके युग में सर्वाधिक लोकप्रिय, जीवन की चेतना के साथ ~~संचरणशील~~ सतत संचरणशील एवं हिन्दी उपन्यास परम्परा को संसार की अन्य भाषाओं के साहित्य की दिशा में उन्मुख बनाती हुई दृष्टिगत की जा सकती है। इसका एक प्रमाण यह है कि अनेक महत्वपूर्ण कृतियां भारतीय भाषाओं में ही नहीं संसार के अन्य देशों की भाषाओं में अनूदित हो रही हैं। विश्व की अनेक औपन्यासिक कृतियां हिन्दी में भी पुष्कल मात्रा में अनूदित होती जाती हैं। यह साहित्यिक आदान-प्रदान रचनाधर्मिता के विकास में एक सीमा तक सहायक कहा जा सकता है।